१५ वीं गाथा। **टीका** — फिर थोड़ा, कोई कहता था फिर से लेना, किसी ने कहा था। कहता था (श्रोता : दरबार ने कहा था) यह आत्मा वस्तु कैसी है? कि यह 'यह' '**अबद्धस्पृष्ट**' है। जिसको यहाँ आत्मा कहते हैं, वह तो राग और कर्म के निमित्त के स्पर्श से-बन्ध से रहित है। अर्थात् यह मुक्तस्वरूप है, उसका त्रिकाली स्वभाव मुक्तस्वरूप है। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट। '**अनन्य**' अन्य-अन्य गति, यह उसमें नहीं है। वह तो अनन्य एकरूप त्रिकाल है। '**नियत**' निश्चय एकरूप, निश्चय त्रिकाल है। उसमें पर्याय का भेद है, वह वस्तु में नहीं है। '**अविशेष**' वह सामान्य है। गुण का भेद/विशेष उसमें नहीं है। आहाहा! जो आत्मा है, वह सामान्य है। जिसमें गुण और गुणी का भेद भी नहीं है। आहाहा! यह गुणमय कहा था न? अनन्त गुणमय आत्मा.... यह विशेष/भेद नहीं और '**असंयुक्त**' आकुलता की संयुक्तता से रहित है अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है — ऐसे-ऐसे पाँच भावस्वरूप... है तो एक समय में परन्तु पाँच भावस्वरूप एक समय में है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ जिसको आत्मा कहते हैं, वह आत्मा पाँच भावस्वरूप, 'यह', यह अर्थात् पर्यायदृष्टि और रागदृष्टि छोड़कर, यह आत्मा पाँच भावस्वरूप है, उसकी अनुभूति, ऐसे आत्मा की अनुभूति, ऐसे पाँच भावस्वरूप, मुक्तस्वरूप, सामान्यस्वरूप, नियतस्वरूप, अन्य-अन्य नहीं/अन्य-अन्य नहीं। अनन्यस्वरूप ही है। ऐसे आत्मा की अनुभूति... आत्मा की अर्थात् ज्ञानचेतना में अनुभव करके जो निर्मलपर्याय होती है, वह आत्मा की अनुभूति आत्मा है, वह त्रिकाली द्रव्य पाँच भावस्वरूप और उसकी अनुभूति है, वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पूरे जैनशासन का मर्म है। आहाहा!

समयसार शासन करूँ.... भाई! आता है न, पण्डितजी! पहले, पण्डित जयचन्दजी! समयसार शासन करूँ.... पहले आता है न शुरुआत में, शुरुआत में है न वह, जयचन्द पण्डितजी, हाँ! है?

श्रोता : समयसार शासन करूँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह — समयसार शासन करूँ, (देशवचनमय भाई) है। यह जैनशासन कहो, या समयसार कहो। आहाहा! यह पण्डित जयचन्दजी ने पहले लिया है। समयसार शासन करूँ (ऐसा लिया है)। समयसार का ज्ञान स्वभाव जो है, आनन्द का, उसे मैं बताऊँगा। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! यह तो अन्तर सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञान का क्या अनुभव है? उसकी बात है। सम्यग्दर्शन की बात तो चौदह में चली, अब उसके साथ सम्यग्ज्ञान.... तो सम्यग्दर्शन में तो आत्मा की अनुभूति, वह सम्यग्दर्शन (है)। अब यहाँ ज्ञानानुभूति, वह सम्यग्ज्ञान। ज्ञानानुभूति का अर्थ? है न पहले है। आहाहा!

भगवान आत्मा परमानन्द चैतन्य आत्मरस देव दिव्यशक्ति का भण्डार भगवान जो एकरूप है, वह मुक्तस्वरूप है। उसका स्वरूप राग और पुण्य-पाप की आकुलता से रहित ही है। एकरूप है और सामान्य है। उसका विशेषपने अनुभूति में विशेष लेना। वह गुणभेद विशेष अलग चीज है, यह उसमें यह तो सामान्य है परन्तु उस सामान्य ज्ञायकभाव का ज्ञायक के अवलम्बन से एकाकार ज्ञान की जो पर्याय उत्पन्न हो, उसे यहाँ अनुभूति कहा गया है। आहाहा!

बातें बहुत कठिन, लोगों को यह परिचय नहीं न, इसलिए (कठिन लगती है)।

वस्तुस्थिति यह है। जैनशासन अर्थात् भगवान (आत्मा) पाँच भावस्वरूप प्रभु की अनुभूति - द्रव्य के अनुसार अपनी पर्याय में अनुभव होना, वह अनुभूति, वह भावश्रुतज्ञान, वह ज्ञायकस्वभाव की एकाकार दशा, उसे जैनशासन कहा जाता है। आहाहा!

वह निश्चय से समस्त जिनशासन (की अनुभूति है,....) सारा जैनशासन! आहाहा! चारों ही अनुयोगों में जो वीतरागता उत्पन्न करना कहना है। वह वीतरागता, त्रिकाली वीतरागस्वभाव मुक्तस्वरूप आत्मा के आश्रय से (होती है)। अनुभूति कहो, वीतराग पर्याय कहो, शास्त्र का तात्पर्य वीतरागदशा कहो, उसे जैनशासन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वह निश्चय से समस्त जिनशासन.... सारा जैनशासन... आहाहा! चारों अनुयोगों में कहा वह वीतराग त्रिलोकनाथ ने तो यह कहा है। जिन की आज्ञा वीतरागता उत्पन्न करने की है, गुरु की आज्ञा और शास्त्र की — तीनों की आज्ञा भी वीतरागता उत्पन्न करने की है — तो वह वीतरागता कैसे उत्पन्न हो? कि पाँच भावस्वरूप वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है, उसकी अनुभूति करने से वीतरागपर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! वह समस्त जैन शासन की अनुभूति है।

क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।.... यह भाव — जो ज्ञानस्वरूप भगवान त्रिकाल का अनुभव हुआ, वह भावश्रुतज्ञान है। द्रव्यश्रुतज्ञान में भी ऐसा कहा था, भावश्रुतज्ञान में ऐसा आया। सम्पूर्ण चीज दृष्टि में-अनुभव में आयी। अनुभव में द्रव्य नहीं आया परन्तु द्रव्य की अनुभूति आयी। आहाहा! अनुभूति की पर्याय में सम्पूर्ण पाँच भावस्वरूप आत्मा है, वह अनुभूति की पर्याय में नहीं आता, परन्तु पाँच भावस्वरूप जो आत्मा है, उसकी अनुभूति करना — उसके आश्रय से (अनुभूति करना), उस अनुभूति में आनन्द का स्वाद आना ज्ञान की चेतना प्रगट होना, उसका नाम यहाँ भावश्रुतज्ञान कहा जाता है। अरे...रे! ऐसी बातें हैं। वह **श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।....** यह अनुभूति, जो सम्यग्ज्ञान हुआ; त्रिकाली ज्ञायकभाव के अवलम्बन से जो अनुभूति-भावश्रुतज्ञान हुआ, वह स्वयं आत्मा ही है। भावश्रुत अनुभूति है, वह आत्मा है। राग का, रागभाव आया, वह अनात्मा है। अनात्मा का जाननेवाला आत्मा है। अनात्मा में उत्पन्न होनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय में उत्पन्न होनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! यह तो निश्चय

आत्मा भगवान, यह ज्ञायकस्वरूप.... यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है न ? तो ज्ञायक जो त्रिकाल सामान्य है, उसका अनुभव-सामान्य, अनुभव सामान्य; विशेष का-राग का अभाव करके अनुभव की पर्याय होना, उसे यहाँ सामान्यज्ञान कहते हैं। उस सामान्यज्ञान को भावश्रुतज्ञान कहते हैं। भावश्रुतज्ञान को समस्त जैनशासन की आज्ञा है। उसमें समस्त जैनशासन भाव है। आहाहा! जिसने भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को जाना, उसने लोकालोक, बन्ध-मोक्ष क्या चीज है ? — उसने सबको जान लिया। आहाहा! समझ में आया ?

इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है.... पहले जो दर्शन में आत्मा की अनुभूति कहा था; यहाँ ज्ञान की अनुभूति, यह ज्ञायक जो त्रिकाल है। यह ज्ञान प्रधान से कथन लेकर ज्ञान की अनुभूति वह आत्मा है। यह ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है। आहाहा! आत्मा में एक स्व-संवेदन नाम का गुण है। स्व-संवेदन बारहवाँ गुण है, सैंतालीस (शक्तियों) में प्रकाश नाम का-प्रकाश नाम का गुण है, उस गुण का कार्य क्या ? कि स्वसंवेदन पर्याय में होना उस गुण का कार्य है। प्रत्यक्ष-राग के अवलम्बन बिना, निमित्त के आश्रय बिना, उस प्रकाश नामक गुण का कार्य-गुण की परिणति स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना, वह गुण का कार्य है। यह अनुभूति.... आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना.... आहाहा! जिसमें ज्ञानचेतना प्रगट होना, ज्ञानस्वरूप भगवान में एकाकार होकर जो ज्ञानचेतना प्रगट होती है, उसे यहाँ अनुभूति कहा, भावश्रुत कहा, यह जैनशासन कहा। आहाहा! समझ में आया ?

परन्तु अब वहाँ,.... वहाँ **सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना)....** आहाहा! जो सामान्य त्रिकाली ज्ञायक कहा, उसमें इस ज्ञान का एकाकार होना, वह सामान्यज्ञान का आविर्भाव (है)। सामान्य (अर्थात्) यहाँ पर्याय में विशेष के भेदरहित, पर्याय में अकेले ज्ञायक का ज्ञान में ज्ञानाकार की पर्याय उत्पन्न होना, उसका नाम सामान्यज्ञान प्रगट हुआ — ऐसा कहा जाता है।

सामान्यज्ञान के आविर्भाव.... यह सामान्य अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव का आविर्भाव — ऐसा नहीं है; ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव एकरूप त्रिकाली है परन्तु उसके अवलम्बन से, आश्रय से जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसको सामान्यज्ञान (कहते हैं)। ज्ञान में

एकाकार एकस्वरूप का एकाकार ज्ञान होना, उसका नाम सामान्यज्ञान कहते हैं। समझ में आया? **सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना) और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के....** देखो! विशेष ज्ञेयाकार इन्द्रियज्ञान से जो ज्ञेयाकार ज्ञान होता था, उसका आच्छादन, उसको गुप्त हो गया। अकेला ज्ञान का आकार, एकाकार उत्पन्न हुआ, उसमें अनेकाकार इन्द्रियज्ञान से विषय का अनेकाकार था, वह ढँक गया। आहाहा! समझ में आया? यह तो चाहे जितनी बात करे यह चाहे जितनी.... परन्तु यह बात तो मक्खन है! आहाहा! यह करना है, यह धर्म है। कभी इसके बिना धर्म नहीं होता और कभी आत्मा के आनन्द का स्वाद इसके बिना नहीं आता। आहाहा!

जब तक पुण्य और पाप के राग की कर्मचेतना का स्वाद है, तब तक अनादि से मिथ्यादृष्टि है। क्या कहा? शुभ-अशुभभाव, राग-जिसे यहाँ असंयुक्त कहा था - वह राग आदि संयुक्त है, उससे रहित है परन्तु उस संयुक्तभाव का जब तक स्वाद है.... आहाहा! तब तक उसको यह जैनशासन नहीं मिला। तब तक आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं आया। आहाहा! सामान्य के आविर्भाव, विशेष ज्ञेयाकार..... यह ज्ञानाकार, एकाकार, सामान्यज्ञान और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव-ढँक गया।

जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है.... अकेले भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु... ज्ञान त्रिकाली ज्ञायकभाव, ज्ञानभाव का अनुभव करने से **ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है....** आहाहा! तब आत्मा की पर्याय में वीतरागी ज्ञान-भावश्रुतज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी शर्तें हैं। **तथापि....** ऐसा होने पर भी, ऐसा स्वरूप-ज्ञानाकार ज्ञेय पर्याय में ज्ञानाकार का उत्पन्न होना और ज्ञेयाकार का उत्पन्न न होना — ऐसा वस्तु का स्वरूप होने पर भी, **जो अज्ञानी हैं,....** आहाहा! वस्तुस्वरूप भगवान ज्ञान और सामान्यस्वरूप है, उसका अज्ञानी है, उसका ज्ञान नहीं है। आहाहा! **ज्ञेयों में आसक्त हैं,....** यह जो इन्द्रियज्ञान है, इस इन्द्रियज्ञान में परविषय का ज्ञान होता है, उन ज्ञेयों में आसक्त है। वह परलक्ष्यी ज्ञान हुआ, उसमें जो आसक्त है। आहाहा! सूक्ष्म बात भाई! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! आहाहा!

ऐसा वस्तु का — पाँच भावस्वरूप प्रभु की अनुभूति भावश्रुतज्ञान, जैनशासन और

ज्ञान का एकाकार अनुभव होना, वह वस्तु की स्थिति है, परन्तु उस वस्तुस्वरूप का जिसको ज्ञान नहीं, चैतन्यस्वभावी भगवान सामान्य वीतरागीस्वरूपी प्रभु का ज्ञान नहीं, (वहाँ) अज्ञान है। आहाहा! **ज्ञेयों में आसक्त हैं,....** आहाहा! इन्द्रियज्ञान, ज्ञेय है; स्व-स्वरूप नहीं, परज्ञेय है। आहाहा! अनादि से इन्द्रियज्ञानरूप परिणमा है, परन्तु परज्ञेयपने परिणमा है। आहाहा! स्वज्ञेयपने आया नहीं। आहाहा!

भाई! वीतरागमार्ग बहुत गूढ़ और गम्भीर है प्रभु! आहाहा! इसे तो पहले समझने में भी अलौकिक बात है। यह बात ज्ञान में लेना, बाद में अनुभव में लेना, वह तो अलौकिक बात है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! आहाहा! है?

श्रोता : हमारी बुद्धि तो कानून में चलती है, कानून में-कायदे में।

पूज्य गुरुदेवश्री : कानून में, तुम्हारे कानून में। वकील की बात करते हैं, नन्दकिशोरजी वकील हैं न? सरकार के कायदे तो अज्ञान के हैं, सब कायदे.... आहाहा! यह कायदा, भाई! ये रामजीभाई करते थे न वहाँ कोर्ट में, सब कायदे कुज्ञान के हैं, यह तुम तो वकील हो और याद किया रामजीभाई वकील को याद किया — ऐसा कि वकील जो कायदे निकालते हैं, वह तो कुज्ञान है। आहाहा!

श्रोता : कुज्ञान कहो परन्तु जितलाने का कायदा तो अवश्य है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कायदा यह है। ज्ञायकस्वभाव का-ज्ञेयाकार का-ज्ञानाकाररूप होना, यह ज्ञेयाकार तो जीतना है। जिन है न, जिन! तो जीतना न? उसको जिन कहते हैं। जीतना.... तो कहते हैं किसको जीतना? कि इन्द्रिय ज्ञानाकार जो ज्ञान होता है, उसको जीतना। आहाहा!

श्रोता : कोर्ट में केस हो, उसमें जीतना वह जैन नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ धूल में है, वहाँ तो पाप है अकेला। कोर्ट में अपने रामजीभाई इस कायदे को बराबर उसको पास करावे, क्या कहलाता है वह कोर्ट में? ऐसा कि उसे लाभ दिया और ऐसा किया और अमुक किया। (सब) धूल-धूल है, पाप का लाभ आया। गोदिकाजी! आहाहा!

श्रोता : पैसे का लाभ हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा, धूल में भी लाभ नहीं हुआ। ममता का लाभ हुआ, राग का लाभ हुआ। अनुभूति वीतरागी पर्याय का लाभ है, वह मिथ्यात्व में उस राग का लाभ है। ऐसी बात है भाई! आहाहा!

गाथा आयी है न ठीक शिक्षण-शिबिर में, यह सत्रहवाँ दिन है। आज सत्रहवाँ है न, सत्रहवाँ, बीस दिन, तीन बाकी है कल। आज सत्रह है, दस और सात, बीस दिन है न क्लास, आज सत्रहवाँ है, हमारे सत्तर कहते हैं। तुम्हारे क्या सत्रह, हमारे गुजराती में सत्तर कहते हैं।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **अज्ञानी है,....** अर्थात् ज्ञायकस्वरूप भगवान का भान नहीं है, वह ज्ञान में एकाकार नहीं है, वह ज्ञेयों में एकाकार है। आहाहा! इन्द्रियज्ञान में — इन्द्रिय के विषय इन्द्रियज्ञान में, इन्द्रिय के ज्ञान का विषय में अज्ञानी एकाकार है। आहाहा!

श्रोता : एकाकार का अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस तरफ की एकाग्रता है, जो इन्द्रियज्ञान हुआ.... अरे! भगवान को सुनने से जो ज्ञान हुआ अपनी पर्याय में, वह इन्द्रियज्ञान है, यह तो कल कहा था न? द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उसका विषय — भगवान, भगवान की वाणी आदि को इन्द्रिय कहते हैं। ३१ गाथा में तीनों को इन्द्रिय कहा है टीका में — संस्कृत टीका में (कहा है) द्रव्येन्द्रिय यह जड़; भावेन्द्रिय जो क्षयोपशम की पर्याय एक विषय को एक-एक इन्द्रिय जाने वह, हो और इन्द्रिय के विषय चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, भगवान, भगवान की वाणी, समवसरण, सम्पूर्ण जगत् इन्द्रिय है। आहाहा!

श्रोता : भगवान की वाणी को तो बचाना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वाणी तो जड़ है, जड़ का ख्याल आता है, इसमें ज्ञान आता है, वह परलक्ष्यी ज्ञान है, वह इन्द्रियज्ञान है, उसमें एकाकार होना, आसक्ति होना, वह मिथ्यात्व है। है या नहीं इसमें?

श्रोता : देव-शास्त्र-गुरु इन्द्रिय नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-शास्त्र-गुरु पर है, परज्ञेय है और परज्ञेय का ज्ञान होना, वह

परज्ञान है, अनेकाकार ज्ञान है, भगवान! आहाहा! स्वद्रव्य ज्ञायकभाव का ज्ञान होना, वह एकाकार ज्ञान है। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि **परदव्वाओ दुग्गइ।** आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि शास्त्र का अभ्यास करना; दूसरी ओर ऐसा कहे कि शास्त्र के अभ्यास में बुद्धि जाती है, वह व्यभिचारिणी है।

श्रोता : यही तो समझ में नहीं आता, क्या कहना चाहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं समझ में आता है न? शास्त्र कहता है, वह इन्द्रिय के विषय है, परद्रव्य है न? तो परद्रव्य के लक्ष्य से जो ज्ञान होता है, वह अनेकाकार, ज्ञेय अर्थात् अनेकाकार ज्ञान है, वह आत्मा का ज्ञान नहीं है। आहाहा!

श्रोता : नहीं पढ़ना शास्त्र?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहते हैं न कि पढ़ना। कहते हैं, परन्तु वह स्वलक्ष्य से पढ़ो — ऐसा कहते हैं। प्रवचनसार! प्रवचनसार में ज्ञान अधिकार पूरा हुआ, बाद में अमृतचन्द्राचार्य ने श्लोक लिया है कि यह ज्ञेय का अभ्यास करो, दूसरा अधिकार ज्ञेय का है न? परन्तु वह स्वलक्ष्य रखकर करो; अकेले परलक्ष्य से अभ्यास है, वह ज्ञेयाकार का अनुभव — राग का है। आहाहा! ऐसी बात है प्रभु! यह बात ऐसी है, आहाहा!

बारह अंग का विकल्प.... यह (समयसार के) तेरहवें श्लोक में राजमलजी ने कहा है (कि) वह विकल्प है और बारह अंग में भी कहना यह है (कि) अनुभूति करना। हमारी ओर का लक्ष्य छोड़कर (अनुभूति करना)। आहाहा! समझ में आया? यह प्रश्न हमारे बहुत वर्ष पहले हो गया था। एक (बार) कहा था न, दसवें (संवत् २०१०) की साल में हमारे वे शिवलालभाई हैं न? उनके पिता थे, पिताजी, तो वे श्रीमद् को माननेवाले थे, वहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करना, भक्ति करना, यह वहाँ अगास में बहुत चलता है, फिर ऐसा प्रश्न चला, तब लोग तो हजारों थे, दस की साल, चौबीस वर्ष हुए, तो महाराज! देव-गुरु और शास्त्र पर, वे तो शुद्ध हैं! शुद्ध हैं या परमात्मा हैं, वे पर हैं, सिद्ध हैं या अरहन्त हैं, पंच परमेष्ठी पर हैं, स्वद्रव्य नहीं। परद्रव्य का ज्ञान लक्ष्य में लेना, वह राग है, वह अनेकाकार ज्ञान पर्यायबुद्धि का है। आहाहा! बहुत कठिन बात है भाई!

एक ओर कहे कि आगम का अभ्यास करना, तेरा कल्याण होगा। मोक्षमार्ग

प्रकाशक में पहले अध्याय में आता है, पहले अध्याय में है न? है यहाँ मोक्षमार्ग (प्रकाशक)? नहीं आया, आया नहीं है? पहले अध्याय में आया है कि आगम का अभ्यास करना, तेरा कल्याण होगा। परन्तु वह किस अपेक्षा से? स्ववस्तु भगवान ज्ञान के लक्ष्य से आगम का अभ्यास करो, अकेले पर के लक्ष्य से अभ्यास नहीं। आहाहा! ऐसी बात है भाई! और पद्मनन्दि (पंचविंशति) में तो ऐसा कहा है, पद्मनन्दि आचार्य ने कि जो बुद्धि शास्त्र में जाती है, वह बुद्धि व्यभिचारिणी है — ऐसा पाठ है। उसमें भी — मोक्षमार्गप्रकाशक में भी वह दृष्टान्त है, व्यभिचारिणी कहा है न? कि बात सच्ची है परन्तु वह स्त्री अपने स्वभाव घर में से निकलकर सज्जन के घर जाये तो उसको कोई विशेष दोष नहीं — ऐसा शास्त्र का अभ्यास करने में स्वलक्ष्य से जाये तो उसको कोई दोष नहीं है, परन्तु अकेले शास्त्र के अभ्यास में जाये वह बुद्धि-व्यभिचारिणी है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत कठिन पड़ती है।

श्रोता : यही खटकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही खटकता है, पण्डितजी सत्य बात कहते हैं। आहाहा!

यहाँ यह कहा, देखो न! आहाहा! **अज्ञानी ज्ञेयों में आसक्त हैं,....** यह ज्ञेय अर्थात् द्रव्य गुण, अरहन्त देव उनके गुण और पर्याय यह सब पर, गुरु का द्रव्य, गुण और पर्याय पर तथा शास्त्र की पर्याय वह तो पर ही है। इन परज्ञेयों में आसक्त है। आहाहा! गजब बात है। **उन्हें वह स्वाद में नहीं आता।....** उन्हें उस आनन्द का स्वाद -अनुभूति नहीं होती। आहाहा! परलक्ष्य में ज्ञेयाकार के ज्ञान में रूक गया है, उसको राग का स्वाद आता है, जहर का स्वाद आता है; उसको भगवान अमृतस्वरूप प्रभु का स्वाद उसे नहीं आता। आहाहा! इन्द्रिय की ओर के ज्ञान के विषयों में जो आसक्त है, उसको अनुभूति का आनन्द नहीं आता। उसको तो राग का-दु:ख का वेदन-जहर का (वेदन) आता है। आहाहा! ऐसी बात है।

यह प्रगट दृष्टान्त से बतलाते हैं : जैसे - अनेक प्रकार के शाकादि.... शाक हो, खिचड़ी हो, रोटी हो.... अब तो सबमें नमक डालते हैं न? **भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव....** जो शाक आदि में नमक डालते हैं तो अकेले शाक का सामान्य स्वाद है, वह ढँक गया है, और शाक द्वारा नमक का स्वाद आया इस

विशेष लवण के आविर्भाव (द्वारा) विशेष लवण का अर्थ इस शाक द्वारा खारे नमक का स्वाद आना, विशेष लवण का स्वाद (आना) आहाहा! शाक खारा, रोटी खारी, खिचड़ी खारी... यह खिचड़ी होती है न, खिचड़ी होती है न? तो दो, चार महिलाएँ घर में हों तो वे खिचड़ी चढ़ती हों तो एक महिला ने नमक डाला हो तो दूसरी महिला को पता नहीं कि नमक डाला है, यह तो दूसरी घर में चार-पाँच बहुएँ होती हैं, दोबारा नमक डाल देती है। ऐसे देखो तो इतना खारा क्यों? दूसरी महिला समझ गयी की पहले डाला होगा और मुझसे नमक डल गया। घर में चार महिलाएँ हों और किसी को पता न हो कि इस खिचड़ी में नमक डाला है। फिर महिला यह खारा... खारा.. क्या कहते हैं? खारा बोलते हैं न? खारी खिचड़ी, खारा शाक, खारी रोटी, खारा रोटला, खारी पूड़ी, खारे मूँगफली के दाने — सींगदाने-नमक में करते हैं न! अरे! बादाम को भी नमक में डालकर खारा बनाते हैं, बादाम, बादाम है न बादाम, आहाहा! परन्तु उस अज्ञानी को शाक द्वारा लवण का स्वाद आता है। विशेष द्वारा लवण का स्वाद आता है। सामान्य द्वारा लवण का स्वाद नहीं आता, बस! गृद्धि है न शाक में? आहाहा! शाक बहुत खारा हुआ, खारा हुआ... अरे! शाक खारा है? खारा तो नमक है, लवण है, शाक तो भिन्न चीज है। भिन्न चीज में क्या लवण अन्दर घुस जाता है? आहाहा! समझ में आया?

भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव.... अकेले लवण का स्वाद का ढँक जाना **और विशेष लवण के आविर्भाव....** शाक द्वारा, रोटी द्वारा, खिचड़ी द्वारा लवण का स्वाद **से अनुभव में आनेवाला जो (सामान्य के तिरोभावरूप और शाकादि के स्वाद भेद से भेदरूप)....** अकेले लवण के स्वाद का न आना और शाकादि स्वाद भेद से **(भेदरूप-विशेषरूप) लवण है....** विशेषरूप लवण का अर्थ यह (कि) शाक द्वारा जो लवण का स्वाद, वह विशेष कहा जाता है और अकेले लवण का स्वाद लवण के द्वारा उसको सामान्य कहा जाता है। आहाहा! यह अब ऐसी बातें!

यह तो समझे बिना सीधे करो त्याग, प्रतिमा ले लो, और यह करो तथा वह करो... अर...र! मिथ्या अभिमान! फिर इसे मिथ्या अभिमान चढ़ जाये कि हम त्यागी हैं, यह लोग गृहस्थी सामने समकिती हो, समझ में आया? परन्तु गृहस्थाश्रम में हो और यह जरा वस्त्र बदले तो त्यागी हो गया? मिथ्यात्व का अभिमान है। आहाहा!

श्रोता : लोक में सत्कार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया पागल सत्कार दे, उसमें इसे क्या लाभ हुआ? समझ में आया? पागल परिणाम दे — रिपोर्ट... क्या कहलाता है? वह सर्टीफिकेट! हैं? प्रमाण पत्र, मान पत्र, पागल मान पत्र दे उसकी कीमत क्या? इसी प्रकार इन्द्रिय विषय के जाननेवाले बाहर के त्यागी को त्याग मानकर मान दे, पागल हैं। आहाहा! क्या कहा?

श्रोता : पागल की सभा में तो पागल ही होते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात बापू! बहुत सूक्ष्म भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि लवण का स्वाद शाक द्वारा अज्ञानी को आता है, वह **शाक लोलुप मनुष्य को आता है**.... शाक के लोलुपी को आता है। गृद्धि शाक में है। समझ में आया? कल कहा था न, वह श्रीमद् का नहीं? २५-५० मुमुक्षु थे और भोजन बनाया था। ग्रामीण ग्राम में-हडमताला ग्राम में राणपुर के पास (का प्रसङ्ग है) तो जहाँ शाक आया, शाक खाये बिना उस शाक को देखकर.... क्योंकि वे तो ज्ञानी थे, गृद्धिरहित थे, शाक में लवण बहुत डल गया है (ऐसा कहा)। क्यों साहेब? आपने तो चखा नहीं न? देखो, इस पानी से लौकी का टुकड़ा उबालो, उबालने में उसका रेशा नहीं टूटता, ऊपर का रेशा ऐसा नहीं फटता। रेशा टूट गया है, नमक बहुत है। आहाहा! तो चखा वहाँ खारा... आहाहा! कि अरे! श्रीमद् को तो चखे बिना पता पड़ गया था। परन्तु देखते थे या नहीं? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **लवण है उसका स्वाद अज्ञानी, शाक लोलुप मनुष्यों को आता है किन्तु अन्य की सम्बन्धरहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव....** परन्तु शाक से उत्पन्न नहीं और अकेले लवण से खारे से खारा उत्पन्न होना, उसका प्रगटपना। लवण से लवण का सीधा स्वाद आना, यह सामान्य का आविर्भाव (है) और **विशेष के तिरोभाव से....** आहाहा! **अनुभव में आनेवाला जो एकाकार अभेदरूप लवण है....** आहाहा! अकेला खारा, खारा-खारा लवण है - ऐसा अनुभव में आनेवाले को, आहाहा! **अभेदरूप लवण है, उसका स्वाद नहीं आता....** अज्ञानी को अभेदरूप स्वाद नहीं आता। शाक के लोलुपी को जो लवण अभेदरूप सामान्य है, उसका स्वाद

नहीं आता। आहाहा! **और परमार्थ से देखा जाये तो,....** अब क्या कहते हैं? — वास्तव में यथार्थदृष्टि से देखो तो **विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला क्षाररसरूप.....** जो शाक द्वारा लवण ख्याल में आता था, वही परमार्थ लवण खारा अपने से आता है, वह तो शाक द्वारा भी लवण का स्वाद आता था, वहाँ शाक का स्वाद नहीं था। आहाहा! है?

परमार्थ से.... आहाहा! **परमार्थ से देखा जाये तो, विशेष के आविर्भाव से....** शाक द्वारा, रोटी द्वारा **अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण ही सामान्य के आविर्भाव से....** इस शाक द्वारा जो खारापन दिखता है, उस लवण के द्वारा भी लवण का स्वाद वह उसका आता है। शाक द्वारा जो लवण का स्वाद आता है, वह सामान्य लवण, लवण के लक्ष्य से लवण का स्वाद आता है। समझ में आया? परमार्थ से शाक में भी लवण का स्वाद आता है, लवण का स्वाद आता है तो यह जैसे परमार्थ से देखा जाये तो वह लवण का स्वाद है, वह शाक का स्वाद नहीं। वैसे ही अकेले लवण का स्वाद देखे तो लवण का स्वाद है। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें, लोगों को फुर्सत नहीं मिलती निर्णय करने की, वास्तविक तत्त्व के (निर्णय करने की)। जो प्रथम भूमिका की चीज है वह तो, सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने की यह चीज है। सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति की यह चीज है। आहाहा!

शास्त्रज्ञान और व्याकरण और यह न्यायशास्त्र और बड़े पण्डित सब घूमते हैं। आहाहा! वह तो कल आया था न वहाँ — मोक्षमार्गप्रकाशक में, यह तो पण्डिताई प्रगट करने की चीज है — ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में आया था।

श्रोता : उसमें आत्मा के हित का कारण नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आत्मा के हित की बात है ही नहीं। यहाँ मोक्षमार्ग (प्रकाशक) नहीं है? समझ में आया? कल आया था। कोई नहीं, यह उसमें है, ख्याल है। कल दोपहर को आया था, ख्याल है या नहीं? आहाहा! क्या कहते हैं? कि व्याकरण, न्याय और ऐसे-ऐसे में जिन्दगी गवाँ दे, उसमें कोई हित का पन्थ नहीं है, तब उसने प्रश्न किया तो क्या हमारे इन न्याय आदि के ग्रन्थ का अभ्यास नहीं करना? कि भाई! जो महान

बड़े ग्रन्थ हैं, उनको न्याय-व्याकरण आदि पढ़े बिना बड़े ग्रन्थों का अभिप्राय समझ में नहीं आता, ऐसा है। ऐसा है न? है, पता है। क्योंकि न्यायशास्त्र में बड़ा शास्त्र व्याकरण सहित कथन आया है तो बड़े शास्त्र हैं, इस थोड़े अभ्यास के बिना उसका ख्याल में अभ्यास नहीं आता। यह आया देखो तथा शास्त्राभ्यास में कितने ही तो व्याकरण, न्याय कर्म आदि शास्त्रों का बहुत अभ्यास करते हैं, परन्तु वह तो लोक में पण्डिताई प्रगट करने का कारण है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है न? उनमें आत्महित का निरूपण तो है ही नहीं। आहाहा! तब उनका प्रयोजन इतना ही है कि अपनी बुद्धि बहुत हो तो थोड़ा बहुत इनका अभ्यास करके पश्चात् आत्महित के साधक शास्त्र का अभ्यास करना।

मोक्षमार्गप्रकाशक में (यह बात) बहुत ली है। हजारों बोल का स्पष्टीकरण / खुलासा करते हैं। समझ में आया? पहले जब (संवत् ८२ की साल में) हमारे हाथ में आया ८२ की साल, ५२ वर्ष हुआ। वह तो हमें पढ़ते-पढ़ते कुछ खाना-पीना भोजन लेने जाना कुछ नहीं रुचता। ओहोहो! परम सत्य बात है, कहा। ८२ की साल — संवत् १९८२। ५२ वर्ष हुए (उस समय हम) राजकोट में थे, वहाँ राजकोट में तो सभा, बड़ी सभा थी, वहाँ हम तो सम्प्रदाय में ७४ से यह व्याख्यान करते हैं — ६० वर्ष हुए। तो पहले से हमारी प्रसिद्धि बहुत है तो लोग-हजारों लोग तो उसमें यह हाथ में आया तो न रुचे व्याख्यान करना, न आहार-भोजन लेने जाने का — ऐसी धुन चढ़ जाती थी।

श्रोता : हाथ का लिखा हुआ मिला था?

पूज्य गुरुदेवश्री : छपा हुआ था। ऐसा है कि जो पुस्तक है न, वह पहले मुझे नहीं मिला था, ऐसा-ऐसा यह मिला था। पहले ऐसा उसमें, उसमें और बाद में कहा था न? जो जब अभ्यास किया तो बाद में एक बार हम 'ढसा' गये, ढसा आये, यहाँ से ढसा स्टेशन है। यहाँ ढसा जंक्शन है, वहाँ हम गये। हम तो स्थानकवासी थे न। सम्प्रदाय में-उपाश्रय में उतरे तो उपाश्रय में ऐसे चौकी पर बैठे थे। लोग बहुत आते थे न, उस समय तो, ऐसे नजर की तो अलमारी थी, अलमारी, अलमारी खोली कहीं कोई पुस्तक नहीं, एक मोक्षमार्गप्रकाशक पुस्तक हमारे पास है एक रखी थी। यह क्या? इस स्थानकवासी में यह क्या? स्थानकवासी यह माने नहीं। वह पुस्तक हमारे पास है, तब से रखा। नहीं तो हम

किसी का पुस्तक नहीं रखते थे। चौकी थी वहाँ अलमारी थी, समझे न? ऐसा खोला तो कोई पन्ना-पुस्तक एक भी नहीं। एक ही यह मोक्षमार्गप्रकाशक रखा था। यह कोई साधु-बाधु लाया होगा, फिर उसे ठीक नहीं लगा, स्थानकवासी है न, (इसलिए) छोड़ दिया होगा। मैंने पूछा कि यह पुस्तक कहाँ से आया भाई? यह उन लोगों को-स्थानकवासी को (हमने पूछा)। अरे महाराज! हमें कुछ पता नहीं, आप ले जाओ। सारी अलमारी में एक ही पुस्तक मोक्षमार्गप्रकाशक ऐसा खुला पड़ा था। कहा, ओहोहो! यहाँ पुस्तक स्थानकवासी उपाश्रय में यह मोक्षमार्गप्रकाशक कहाँ से आया? लोगों को पूछा। यह ८६ की साल की बात है। संवत १९८६ — तो कितने वर्ष हुए हैं? ४८ — यह पडा है पुस्तक, बतलाया था एक बार, पड़ा है तब से हम रखते हैं, नहीं तो हम पुस्तक नहीं रखते थे। सब हमें कहते थे तो एक बार ८६ में, इससे पहले ८४ में, यह ८२ में हाथ आया था।

(संवत्) ८४ में हम बगसरे गये थे तो वहाँ एक कल्याणजीभाई करके श्रीमद् के भगत थे, उनके पास मोक्षमार्गप्रकाशक था तो वह कहे महाराज! ले जाओ न! मैंने कहा भाई! ऐसे पुस्तक-वुस्तक हम रखते ही नहीं तो सातवाँ अध्याय लिख लिया। सातवाँ अध्याय है न? लिख लिया, हमारे साथ जीवणलालजी थे, तब से, हम तो कुछ करते नहीं। साथ थे उन्होंने लिख लिया, वह मेरे पास रखा है, ८४ से सातवाँ अध्याय रखा है। निश्चयाभास और व्यवहाराभास, सबका सब सातवाँ अध्याय लिख लिया, हम कोई पुस्तक-वुस्तक रखते नहीं। यहाँ कौन रखे? यह सातवाँ अध्याय लिख लिया था, वह रखा है।

उन्होंने तो कहा — हमें तो बहुत लोग कहते हैं न महाराज! ले जाओ न! अरे श्वेताम्बर गृहस्थ आते थे। गृहस्थ लोग, (आते थे) महाराज! कुछ आज्ञा करो न! आज्ञा अर्थात् कोई पाँच-पच्चीस हजार या दो-पाँच हजार खर्च करने का कहो न! भाई! हम किसी से नहीं कहते, हम किसी को नहीं कहते कि यह ले आओ, यह ले आओ। राणपुर में एक बड़ा श्वेताम्बर सेठ था। तो हमारी बात सुनता था। महाराज! हमें कुछ आज्ञा करो। हम किसी को कहते नहीं कि पाई दो या पैसा दो, यह हमारा काम नहीं है। भाई थे, भाई — उजमसीभाई थे। नागर पुरुषोत्तम के भाई, गृहस्थ थे, करोड़पति नागरभाई के भाई थे। हम तो हमारे पास शास्त्र है वे रखते हैं, बाकी कोई पैसा दो या बँटते हुए दो हम किसी को

नहीं कहते और हम किसी का नहीं रखते, ऐसा। यह उसमें से लिखा, देखो यह! शास्त्र अभ्यास नहीं करना? ऐसा है तो व्याकरण आदि का अभ्यास नहीं करना चाहिए? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। कहते हैं कि उनके अभ्यास के बिना महान ग्रन्थों का अर्थ खुलता नहीं। बड़े महाग्रन्थ संस्कृत में हैं, इसलिए उनका भी अभ्यास तो करना योग्य है, थोड़ा अभ्यास करना और फिर आत्महित का अभ्यास करना। यह बात कहते हैं। आहाहा!

यहाँ यह आया — देखो कि **विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण ही सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण है। इस प्रकार — अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ...** क्या कहते हैं अब? जो शाक द्वारा जिस लवण का स्वाद आता था, विशेष द्वारा, वही परमार्थ से तो लवण का ही स्वाद है, वहाँ शाक का स्वाद है नहीं। इसी प्रकार अब आत्मा में उतारते हैं। **अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ....** इन्द्रियज्ञान के विषयों में जो ज्ञान का ज्ञेयाकार ज्ञान होता है, वह ज्ञान की पर्याय है, वह कहीं परज्ञेय की है नहीं, परन्तु उसे लक्ष्य-ज्ञान की पर्याय, यह ज्ञायक है — ऐसा लक्ष्य नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जैसे १७ वीं (गाथा में) कहा न? १७ वीं गाथा है — अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में भी द्रव्य ही ज्ञान में आता है। आहाहा! क्या कहा यह? १७-१८ गाथा, समयसार (में कहा है) अज्ञानी की पर्याय में.... क्योंकि ज्ञान की पर्याय प्रगट है, उस पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है, उस कारण से ज्ञान की पर्याय में द्रव्य का ही ज्ञान होता है परन्तु अज्ञानी को उसके ऊपर लक्ष्य नहीं है, उसका लक्ष्य पर्याय और राग पर है, अतः ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय (स्वज्ञेय) जानने में आता है, वह उसे जानने में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बात है।

कहो, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव-ज्ञान का (स्वभाव) स्व-पर प्रकाशक है। चाहे तो अज्ञानी का ज्ञान हो परन्तु ज्ञान की पर्याय का स्वभाव तो स्व-पर प्रकाशक है या नहीं? तो इस ज्ञान की पर्याय में, द्रव्य जो ज्ञायक त्रिकाली सामान्य है, उसका ज्ञान होता है, स्व-प्रकाशक है, पर-प्रकाशक भी है और स्व-प्रकाशक भी है परन्तु अज्ञानी की ज्ञानपर्याय में स्व-प्रकाशक ज्ञान होने पर भी, उसका लक्ष्य ज्ञेय पर-परज्ञेय पर है, स्वज्ञेय पर नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ शाक द्वारा लवण आता है — ऐसे ज्ञेय द्वारा ज्ञान होता है, है तो ज्ञान की पर्याय अपनी, आहाहा! समझ में आया? वास्तव में तो जो ज्ञेयाकार ज्ञान है, उसमें भी ज्ञान की पर्याय है तो अपनी; वह पर्याय पर को जानती है, वह जानने की पर्याय, पर्याय है तो अपनी। समझ में आया? पर के ज्ञायकपने से ज्ञान होता है, वह भी पर्याय को परप्रकाशक की ज्ञानपर्याय है तो अपनी.... आहाहा! सूक्ष्म बहुत भाई! तथापि वह परप्रकाशक की पर्याय है तो अपनी, परन्तु इस स्व-तरफ का लक्ष्य नहीं है तो उस ज्ञान के ज्ञेयाकारपने स्वाद उसको आता है। अकेले ज्ञान का स्वाद नहीं आता। आहाहा! आहाहा!!

अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव.... अज्ञानी को, सामान्य-अकेले ज्ञान का, आनन्द का आना ढँक गया। **और विशेष के आविर्भाव से....** और ज्ञेयाकार से ज्ञान का **अनुभव में आनेवाला (विशेषभावरूप, भेदरूप, अनेकाकाररूप) ज्ञान वह अज्ञानी, ज्ञेय-लुब्ध....** आहाहा! उसमें (उदाहरण में) शाक लोलुप था, यह ज्ञेय-लुब्ध (है।) अपने ज्ञायकभाव का लक्ष्य छोड़कर ज्ञेयलुब्ध, आहाहा! पर के लक्ष्य से हुआ अपनी पर्याय में ज्ञान वह भी परज्ञेय है, क्योंकि अपना ज्ञान उसमें नहीं आया। यहाँ परज्ञेय में लुब्ध प्राणी... आहाहा! पहले तो यह बात... शाक का तो दृष्टान्त दिया है। **अज्ञानी, ज्ञेय-लुब्ध जीवों के स्वाद में आता है....** क्या? विशेष के आविर्भाव, वह अनुभव में आता है। विशेष के आविर्भाव में अनुभव में आता है। सामान्य का तिरोभाव हो गया।

श्रोता : इसमें समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आता तो फिर से कहते हैं, विशेष कहते हैं। देखो! **मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव....** अज्ञानी को-अज्ञानी ज्ञेय में लुब्ध है तो एकाकार ज्ञान का तिरोभाव-ढँक गया है। एकाकार ज्ञान, ज्ञान के लक्ष्य से जो होना है, वह उसको होता नहीं है **और विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला....** ज्ञेय द्वारा ज्ञान, वह अज्ञानी को ज्ञेयलुब्ध जीवों को स्वाद में आता है। राग स्वाद में आता है। आहाहा! परज्ञेयों के आकारे ज्ञान हुआ, वह राग का ज्ञान वहाँ तो है तो राग स्वरूप ज्ञान

है। आहाहा! तो उसको... है? आहाहा! स्वाद में आता है, ज्ञेयलुब्ध जीवों को वह राग का स्वाद आता है। आत्मा का-ज्ञायकभाव का स्वाद नहीं आता। आहाहा!

क्या कहते हैं, बहुत गजब! आहाहा! टीका तो टीका है। सन्त-दिगम्बर सन्त केवली के पथानुगामी, ओहो... इन्होंने तो केवलज्ञान का विरह भुला दिया है। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहते हैं देखो! आहाहा! अन्य ज्ञेयाकार का भेदरूप, है? **विशेष के आविर्भाव अनुभव में आनेवाला ज्ञान अज्ञानी ज्ञेयलुब्ध जीवों के स्वाद में आता है।** पर ज्ञेयाकार का ज्ञान जो हुआ उसका ख्याल-राग का स्वाद आता है। आहाहा! पर ज्ञेयाकार का ज्ञान हुआ, अज्ञानी उसमें लुब्ध है तो उसको उसका-राग का स्वाद आता है। आहाहा! पर शास्त्र का ज्ञान हुआ परन्तु वह इन्द्रियज्ञान के अन्दर लक्ष्य से हुआ वह परज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, उसमें जो लुब्ध है, उसको राग का स्वाद आता है। आहाहा!

श्रोता : दृष्टि की भूल है।

समाधान : दृष्टि की भूल है। आहाहा! इसके लिए तो बताते हैं। आहाहा!

भाई! तुम तो सामान्य ज्ञानस्वरूप त्रिकाल हो न! तो सामान्य जो त्रिकाल है, उसके स्वाद में तेरा सामान्य आना चाहिए। उसमें अनेक ज्ञेयाकार का ज्ञान नहीं होना चाहिए परन्तु तेरा लक्ष्य वहाँ नहीं और ज्ञेयों में लुब्ध है। आहाहा! ज्ञायकस्वभावभाव भगवान आत्मा का अनादर करके परज्ञेयाकार का ज्ञान हुआ, उसमें लुब्ध होकर इस रागी को राग का स्वाद आता है। आहाहा!

अकेले पर के शास्त्रज्ञान में भी राग का स्वाद आता है, कहते हैं। आहाहा! अब यह वाद-विवाद से कहीं पता नहीं चलता, प्रभु! क्या करें? आहाहा! जो ज्ञान की पर्याय, इन्द्रिय द्वारा विषय का ज्ञान हुआ, चाहे तो वह शास्त्रज्ञान हो तो भी परज्ञेयाकार जो ज्ञान हुआ, उसमें लुब्ध रहकर, पर्यायबुद्धिवाले, ज्ञेय में लुब्धवाले को आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं आता। राग का स्वाद आता है। आहाहा! आकुलता उत्पन्न होती है। भाई! तेरे स्वद्रव्य का आश्रय वहाँ नहीं हुआ, परद्रव्य के आश्रय से जो ज्ञान हुआ तो पर ज्ञेयाकार ज्ञान में राग का स्वाद आता है। आहाहा! विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)